Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2021 GISRRJ | Volume 4 | Issue 4 | ISSN : 2582-0095

बौद्ध शिक्षा पद्धति एवं इससे जुड़े संगठन

रणविजय नारायण ठाकुर
इतिहास विभाग, पंडित यमुना कार्यी जयंती महाविद्यालय, बी०आर०ए०बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

Article Info
Volume 4 Issue 4
Page Number: 05-09
Publication Issue :
July-August-2021
Article History
Accepted : 10 July 2021
Published : 20 July 2021

शोधसार: बौद्ध शिक्षण पद्धति का आरंभ स्वयं महात्मा बुद्ध ने किया था, जिसमें सरल और सुबोध जनभाषा में जीवन के तत्वों की चर्चा थी। व्याख्यान और प्रश्नोत्तर के आधार पर विचारों का आख्यान किया गया था। उन्होंने धर्म के प्रचार में प्रासंगिक उपमा, दृष्टांत, उदाहरण, कथा आदि का समावेश किया था जिससे उसका तत्व श्रोताओं को सरलतापूर्वक बोधगम्य होता था। विचार–विनिमय, तर्क और पर्यालोचन को बौद्ध धर्म में प्रतिष्ठित किया गया। बौद्ध शिक्षा पद्धति में सत्य, दार्शनिक तथ्य, तर्क, पर्यवेक्षण, मनन आदि पर अधिक बल दिया गया। बुद्ध के पश्चात् समाज में बौद्ध शिक्षा का क्रमशः प्रसार होने लगा। बौद्ध मठों और बिहारों के माध्यम से बौद्ध शिक्षा का प्रचार भारत के विभिन्न भागों में हुआ था। प्रारंभ में हिन्दू और बौद्ध शिक्षाओं के मूल में कोई विशेष अंतर नहीं था, किंतु बाद में आकर दोनों शिक्षा–प्रणालियों के आदर्श और पद्धति में बहुत कम साम्य रह गया।
|

विनय और धर्म की शिक्षा उपासक को दी जाती थी, जिसमें महात्मा बुद्ध के धर्म सिद्धांतों का नियोजन होता था। सुत्त, विनय और धम्म के शिक्षार्थी एक साथ रहते थे अथवा भिक्षु सुत्त का पाठ करते थे, विनय का विमर्श करते थे तथा धम्म का पर्यालोचन करते थे, जिससे उनके ज्ञान की वृद्धि होती थी। यही नहीं, बौद्ध विहारों के माध्यम से बुद्ध के वचन और शिक्षाएँ प्रचारित होती थी। बौद्ध संघ में भिक्षु को दीक्षा प्राप्त करने के जिए प्रवज्या और उपसम्पदा जैसे संस्कार भी आवश्यक माने गये। प्रवज्या ग्रहण से ही उपासक का जीवन प्रारंभ होता था। इसमें उसके अभिभावक की अनुमति आवश्यक होती थी। प्रायः 8 वर्ष के बाद किसी का भी प्रव्रज्या संस्कार सम्पन्न किया जा सकता था। ऋषि प्रव्रज्या के अंतर्गत बालक गृहीत किया जाता था, जहाँ वह बौद्ध शिक्षा ग्रहण करता था। ऐसे बौद्ध वर्षा ऋतु के अतिरिक्त अन्य ऋतुओं में भ्रमण करते थे। ऐसे प्रव्रजित को करूणा, मुदिता और उपेक्षा भावनाओं का अभ्यास करना पड़ता था। उसे मैत्री भावना से सुभाषित चित्त अर्पण समाधि और ब्रह्मपरायणता का अनुपालन करना पड़ता था। उपासकत्व की समाप्ति पर बौद्ध भिक्षु के लिए उपसम्पदा संस्कार की आयोजना की जाती थी। उस समय तक उसकी आयु 30 वर्ष के लगभग हो जाती थी। उपासक बनने के लिए किसी प्रकार का भेद–भाव नहीं था। उसे केवल बुद्ध के उपदेशों और शिक्षाओं पर विश्वास करना पड़ता था। वह भिक्षु आचार्य के निर्देशों और शिक्षाओं पर चलता था। बुद्ध, धर्म और संघ के प्रति उपासक सर्वदा निष्ठावान रहता था। संघ में रहते हुए संघ के नियमों और आचारों का भिक्षु छात्र दृढ़तापूर्वक अनुपालन करता था। वह विहार के सभी कार्यों की देखभाल करता था। हिन्दू छात्रों की भाँति वह भी ब्रह्मचर्य व्रत और अध्यात्म मार्ग का अनुपालन करते हुए भिक्षाटन करता था। भिक्षु को अध्ययनरत होते हुए अपना चित्त और मन प्रांजल और उदात्त रखना पड़ता था। इसीलिए महात्मा बुद्ध का यह कथन था कि हे भिक्षुओं, पशु भी पारस्परिक प्रेम और सौहार्द्र के साथ रहते हैं। तुम्हें भी इसी प्रकार रहना चाहिए, जिससे तुम्हारा प्रकाश शोभायुक्त हो। जिस प्रकार ब्रह्मचारी और गुरू के बीच का संबंध पुत्र और पिता का था, उसी प्रकार उपासक और आचार्य के बीच का संबंध था। उपासक भी बौद्ध आचार्य की सेवा करते हुए हिन्दू ब्रह्मचारियों की तरह अपरिग्रह, इन्द्रिय विग्रह, संयम व्रत जैसा कठोरता का नियम अपनाता था। आचार्य सर्वदा उपासक के हित लाभ के लिए सन्नद्ध रहता था। संघ के नियमों और भाष्यों को आचार्य मानता था।

बौद्ध संघ में किसी शिक्षार्थी का प्रारंभिक प्रवेश समारोह प्रव्रज्या होता था। इस व्यवस्था के अनुसार पाँच से आठ वर्ष की आयु का अविवाहित बालक अथवा कोई भी जिज्ञासु उपासक प्रव्रज्या लेकर अपना घर–बार छोड़ ज्ञान–पिपासा शांत करने के लिए

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

पहली व्यवस्था और आस्था को त्याग बौद्ध व्यवस्था में प्रवेश करता था। प्रव्रजित होने के लिए यह आवश्यक था कि वह व्यक्ति अपनी पूर्व की परम्परागत जातीय श्रेष्ठता और उच्चता तथा परम्परागत आस्थाओं और विश्वासों की भावना को सर्वथा त्याग दे।

प्रव्रजित होने के लिए ब्राह्मण शिक्षा की भाँति वर्ण या कुल की उच्चता की अपेक्षा यहाँ न थी। वह ऐसे संघ में प्रवेश करता था जो सिद्धांततः जातिगत और कुलगत विषमताओं से अलग था। चुल्लवग्ग में उद्धृत हुए वचन इस संदर्भ में विशेष रूप से हमारा ध्यान आकर्षित करते हैंः–

ओ श्रमणों! जिस प्रकार गंगा, यमुना और अचिरावती आदि नदियाँ समुद्र में समा जाने पर अपना अलग–अलग अस्तित्व खो बैठती है और उन सबका एक ही नाम होता है– समुद्र। उसी तरह प्रव्रज्या पाकर संघ में प्रवेश पा लेने पर प्रव्रजित हो धर्म दुष्टि प्राप्त भिक्षु की कोई न जाति रहती है, न वर्ण, न कोई उसका घर होता है। वह केवल श्रमण होता है जो केवल शाक्यवंशी अमिताभ बुद्ध का अनुसरण करता है।

क्या समाज के निम्न वर्ग के सदस्यों को भी बौद्ध धर्म में प्रवेश पाने के लिए प्रव्रज्या दी जाती थी? विनयपिटक एवं अन्य बौद्ध धर्म की पोथियों में उपालि नाई तथा चिड़ीमार तक के संघ में प्रविष्ट होने का विवरण उपलब्ध है। सैद्धांतिक रूप में बौद्ध ग्रंथ सभी जातियों के प्रवेश को स्वीकार करते हैं, परन्तु व्यावहारिक रूप में बौद्ध संघ में बौद्धिक दृष्टि से सम्पन्न उच्च वर्गीय व्यक्ति ही प्रायः प्रवेश के लिए आते थे। अथवा परम्परा से उच्च जातीय लोगों का बौद्धिक स्तर ऊँचा होने के कारण बौद्ध संघ के प्रति अधिकांश वे ही लोग आरंभ में आकर्षित हुए क्योंकि बौद्ध संघ या धम्म आरंभ में मुख्यतया तार्किक विचारधारा पर आधारित धार्मिक संगठन था। परम्परा से शोषित, उत्पीड़ित नीचे स्तर का समाज में भी तब बौद्धिक दृष्टि से हीन कोटि का रहा होगा। शायद संघ में प्रवेश के प्रति उस निम्न वर्गीय समाज में वैसा उत्साह नहीं रहा होगा। संघ में उनके प्रवेश पर प्रतिबंध बिल्कुल न था। पर इस बात को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता कि बुद्ध स्वयं ऊँची जाति के कुलीन वंश के क्षत्रिय थे। समाज में पहले से स्थापित ब्राह्मणों की श्रेष्ठता के खिलाफ क्षत्रियों की श्रेष्ठता को सिद्ध करने के लिए संघर्ष जारी था। श्रेष्ठियों की उन्हें भारी सहानुभूति प्राप्त थी इसीलिए उनके जीवन काल में और बाद में भी बौद्ध संघ में प्रव्रज्या प्राप्त करने के लिए उच्च वर्ग के लोग भारी संख्या में आए। बौद्ध ग्रंथों के लेखक अधिकांश वे ही हुए जिनके यहाँ परम्परागत शिक्षा के संस्कार पहले से परिपक्व हो चुके थे। सारिपुत्र कोग्गलायन, महाकाश्यप अश्वघोष, नागार्जुन सभी ब्राह्मण थे। शायद सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से निम्न वर्गीय लोग इन बौद्धिक धार्मिक ग्रंथों के पचड़े में पड़ना नहीं चाहते हों। परन्तु इतिहास से इस बात की पुष्टि होती है कि ज्यों–ज्यों बौद्ध धर्म फैलता गया, यह लोक धर्म के रूप में निम्न वर्गीय समाज में भी लोकप्रिय होता गया।

प्रव्रज्या की यह व्यवस्था कुछ बिंदुओं पर ब्राह्मण शिक्षा व्यवस्था से मिलती है। इसके अंतर्गत शिक्षार्थी घर को त्याग गुरूकुल में प्रवेश पाता था और जीवन–यापन के लिए भिक्षाटन करता था। अंतर यह था कि ब्राह्मण शिक्षा व्यवस्था में गुरूकुल में प्रविष्ट छात्र एक सीमित अवधि के लिए ब्रह्मचारी होता था, स्नातक होने पर गृहस्थ और वानप्रस्थ के बाद चौथे आश्रम में प्रवेश पाने पर ही वह प्रव्रजित होता था। बौद्ध शिक्षा व्यवस्था के अंतर्गत तो ब्रह्मचारी या गृही भी प्रव्रज्या प्राप्त कर सकता था। उसे तीन आश्रमों से गुजरने की कोई आवश्यकता नहीं थी। उपनयन से सभावर्तन संस्कार सम्पन्न होने तक का वह काल ब्रह्मचर्याश्रम के नाम से ब्राह्मण शिक्षा एवं वर्ण व्यवस्था में जाना जाता था। इसकी अवधि समान्य रूप से बारह वर्षों की होती थी। ब्रह्मचारी गृहस्थ आश्रम में प्रवेश कर संतानोत्पादन एवं अन्य आवश्यक लौकिक कर्तव्यों का सम्पादन करता था। बौद्ध शिक्षा व्यवस्था में समान रूप से ही ब्रह्मचर्य पर सीमित अवधि के लिए बल ही नहीं दिया गया, अपितु यहाँ ब्रहम्चर्य का पालन तो जीवन–व्यापी था जिसमें त्रुटि होने पर प्रव्रजित भिक्षु को संघ से निष्कासित कर दिया जाता था। इस दृष्टि से बौद्ध शिक्षा व्यवस्था ब्राह्मण धर्मानुमोदित ब्रह्मचर्य के प्रति उसकी अपेक्षा अधिक निष्ठावान था। इसीलिए बुद्ध ने ब्रह्मचर्य पालन पर बहुत बल दिया है। प्रव्रज्या पाने पर यदि कोई भिक्षु ब्रह्मचर्य व्रत से स्खलित होता था उस पर पाराजिक दोष लगाकर संघ से निष्कासित कर दिया जाता था। पाराजिक के अंतर्गत मेथुन, चोरी, मनुष्य हत्या और चमत्कार प्रदर्शन का दावा परिभाषित था।

शिक्षा का मुख्य उद्देश्य था विधार्थी को धर्म और विनय की आवश्यक बातें समझाना जिससे कि वह भली–भाँति समझ सके कि गलत सिद्धांत कौन है और वाद–विवाद करके अन्य व्यक्तियों को सही सिद्धांत ग्रहण करने और गलत सिद्धांत को छोडने के लिए राजी कर सके। ब्राह्मण शिक्षा पद्धति में विधार्थी गुरू के परिवार में जाकर रहता था और विधार्थियों की संख्या दस या पन्द्रह से अधिक नहीं होती थी। किंतु बौद्ध शिक्षा व्यवस्था में विहारों में शिक्षा दी जाती थी, जिनमें भिक्षुओं की संख्या पर्याप्त होती थी। इन बौद्ध भिक्षुओं को सामूहिक शिक्षा दी जाती थी। भिक्षु स्वयं कृषि करके अन्न उपजाते और विहार के अंदर ही पशुओं का पालन करके दूध, दही, घी, मक्खन आदि प्राप्त करते थे। इन्हें एक ही प्रकार की शिक्षा दी जाती थी और वे एक ही प्रकार के अनुशासन में रहते थे। इस प्रकार उन्हें भाईचारे और लोकतंत्र की शिक्षा भी मिल जाती थी। किंतु प्रत्येक भिक्षु को स्वाध्याय और मनन के लिए पर्याप्त समय मिलता था। वह अपनी कोठरी में स्वाध्याय और मनन करता था और अपने वर्ग में उपाध्याय के

निर्देशन में अपनी सभी शंकाओं का समाधान कर लेता था। बौद्ध विहारों में बीसियों अध्यापक सैकड़ों विधार्थियों को शिक्षा देते थे। इनमें भोजन के लिए भिक्षा करने की कोई आवश्यकता नहीं थी।[1]

सद्धि विहारिकों को साधारणतया विनय गाथाओं जातक कहानियों, प्रार्थनाओं, मूलतत्वों और बौद्ध दर्शन की शिक्षा दी जाती थी। विनय पिटक के द्वारा उन्हें अभीष्ट अनुशासन सिखाया जाता था और धम्मपिटक के द्वारा बौद्ध धर्म के सिद्धांत पढ़ाएँ जाते थे। जातकों से भी शिक्षा के कुछ उद्देश्यों पर प्रकाश पड़ता है। एक जातक में लिखा है कि राजा लोग चाहे उनके नगर में ही अच्छे विद्वान हों, अपने पुत्रों को दूर की शिक्षा संस्थाओं में पढ़ने इसलिए भेजते थे कि उनमें अभिजात कुल में जन्म होने के कारण जो अंधकार होता है वह दूर हो जाय, ये गर्मी और सर्दी को सहन कर सकें और लोक व्यवहार से परिचित हो सके।[2]

सद्धिविहारिक को जो शिक्षा जाती थी उसका मुख्य उद्देश्य उसकी वैदिक दृष्टि को तेज करना था। कालांतर में बौद्ध विहार केवल आध्यात्मिक प्रशिक्षा के केन्द्र न रहे, ये विद्या के केन्द्र बन गए। अन्य धर्मावलम्बियों को बौद्ध बनाने के लिए यह आवश्यक था कि बौद्ध भिक्षु उनसे शास्त्रार्थ करके यह सिद्ध कर सकें कि दूसरी सिद्धांत गलत है और बौद्ध धर्मावलम्बियों के सिद्धांत सही है। इसीलिए बौद्ध शिक्षण पद्धति में तर्क और न्याय की शिक्षा पर विशेष बल दिया गया। उदाहरण के रूप में हम सप्तदश भूमिशास्त्र नामक ग्रंथ का उल्लेख कर सकते हैं, जिसकी रचना संभवतः 400 ई० के लगभग हुई। इस ग्रंथ के पन्द्रहवें खंड में मैत्रेय सात अध्यायों में वाद–विवाद कला का विवेचन करता है।

भिक्षुओं को केवल बौद्ध ग्रंथ ही पढ़ाए जाते थे, उन्हें अन्य धर्मों के सिद्धांतों तथा दर्शनों की भी शिक्षा दी जाती थी। तभी वे सफलतापूर्वक अन्य धर्मावलम्बियों के साथ वाद–विवाद कर सकते थे। विहारों के निर्माण और सफलतापूर्वक चलाने के लिए भिक्षुओं को कृषि विद्या एवं वास्तुकला जानना भी आवश्यक था। अतः भिक्षुओं को ऐसे व्यवहारिक महत्व के विषयों की भी शिक्षा दी जाती थी। ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी में जब धर्म ग्रंथों को लिखने का प्रचलन प्रारंभ हुआ तो भिक्षु पुस्तकों की प्रतिलिपि करने, उनका संग्रह करने और सुरक्षा करने में लग गये।

किंतु इन विद्यापीठों में शिक्षा प्राप्ति के साथ–साथ प्रत्येक भिक्षु को उनके लिए निर्धारित अनुशासन के सभी नियमों का पालन करना पड़ता था। किंतु इन विश्वविद्यालयों में अब केवल भिक्षु ही शिक्षा प्राप्त नहीं करते थे। दो अन्य वर्गों के विधार्थी भी थे– एक मानव और दूसरे ब्रह्मचारी।

बौद्ध विहारों में विधार्थियों के वर्गीकरण से उनके शैक्षणिक उद्देश्यों पर कुछ प्रकाश पड़ता है। सद्धिविहारिक वे भिक्षु थे जो बौद्ध ग्रंथों का आवश्यक ज्ञान प्राप्त करके अपनी आध्यात्मिक उन्नति करना चाहते थे। मानव वे बालक थे जो बौद्ध सिद्धांतों का अध्ययन इसलिए करते थे कि भविष्य में भिक्षु धर्म की दीक्षा ले सके। ब्रह्मचारी साधारणतया धर्मोत्तर ग्रंथ पढ़ते थे। वे उपासक रहकर ही जीवन बिताना चाहते थे।

युवानच्वांग ने लिखा है कि भारतीय अध्यापक सदा अपने शिष्यों को ज्ञान–प्राप्ति के लिए प्रोत्साहित करते थे और उनकी बुद्धि तीक्षण बनाते थे। चरित्र निर्माण पर तो सभी बौद्ध शिक्षा संस्थाओं में बहुत अधिक बल दिया जाता था। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि बौद्ध शिक्षा पद्धति के मुख्य उद्देश्य विधार्थियों का बौद्धिक विकास, उनमें अनुशासन की भावना जागृत करना, लोकतंत्रीय व्यवहार की शिक्षा देना और बौद्ध सिद्धांतों का प्रतिपादन थे।

उपाध्याय पढ़ाने से पूर्व सद्धिविहारिक से आराम से बैठने के लिए कहता था। फिर वह त्रिपिटक से कुछ पद छांट कर परिस्थिति के अनुसार उसे पाठ पढ़ाता था।[3] उस पाठ के संबंध में उपाध्याय भली–भाँति प्रत्येक बात सद्धिविहारिक को समझाता था। वह शिष्य के नैतिक चरित्र का निरीक्षण करता था और उसकी भूलों के लिए उसे चेतावनी देता था। जब शिष्य कोई अपराध करता था तो वह उसे प्रायश्चित करने का आदेश देता था। विधार्थी प्रतिदिन पढ़ाए हुए पाठ को याद करता और उसपर मनन करता था। इस प्रकार सद्धिविहारिक धार्मिक पुस्तकों का ज्ञान अच्छी प्रकार प्राप्त करता था और चरित्र का निर्माण करता था।

विनय पिटक को पाँच वर्ष में भली–भाँति समाप्त करके सद्धिविहारिक उस उपाध्याय को छोड़कर जा सकता था, किंतु जहाँ भी वह जाता वह किसी उपाध्याय के निरीक्षण में रहता था। दस वर्ष बाद उसे उपाध्याय के नियंत्रण में रहने की आवश्यकता नहीं रहती थी, किंतु यदि उसने विनय पिटक का अर्थ भली–भाँति न समझा हो तो उसे शेष जीवन में किसी भी उपाध्याय के नियंत्रण में रहना पड़ता था। युवानच्यांग के अनुसार साधारणतया विधार्थी तीस वर्ष की अवस्था तक शिक्षा प्राप्त करते थे। इस काल में भी कुछ विद्वान घूम–घूम कर शिक्षा देते थे।[4]

सामूहिक शिक्षा का प्रबंध पाँचवी शती ईस्वी के लगभग बौद्धों ने किया। बौद्ध विहारों में नव दीक्षित शिष्यों को सद्धिविहारिक कहा जाता था। उन्हें साधारणतया दस वर्षों तक शिक्षा दी जाती थी। वे बौद्ध धर्म ग्रंथों का अध्ययन करते और आध्यात्मिक उन्नति के लिए योगाभ्यास आदि करते थे। पाँचवी शती से पूर्व बौद्ध विहारों में केवल भिक्षुओं को शिक्षा दी जाती थी,

किंतु इस शताब्दी के अंत में उपासकों को भी शिक्षा दी जाने लगी। बौद्ध विहारों में से लगभग दस प्रतिशत विहारों में उच्च शिक्षा दी जाती थी।

विहारों में सद्धिविहारकों के अतिरिक्त उपासकों में दो प्रकार के अन्य विधार्थी होते थे। बाल विधार्थी मानव कहलाते थे। वे भविष्य में दीक्षा प्राप्त करने की इच्छा से बौद्ध ग्रंथों का अध्ययन करते थे। दूसरे ब्रह्मचारी कहलाते थे। वे धर्मोत्तर ग्रंथों का अध्ययन करते थे। उनका भिक्षु बनने का कोई विचार नहीं होता था। सद्धिविहारिकों के भरण–पोषण का व्यय संघ चलाता था, किंतु मानवों तथा ब्रह्मचारियों को अपना सब व्यय स्वयं वहन करना पड़ता था।

इन विहारों का अध्यक्ष मुख्य भिक्षु होता था, जिसका चुनाव संघ के सभी सदस्य करते थे। अध्यक्ष के निर्वाचन के समय व्यक्ति के चरित्र, उसकी अवस्था और उसकी विद्वता का ध्यान रखा जाता था। इन विहारों में दो परिषद् होती थी। एक शैक्षिक विषयों पर विचार करने के लिए और दूसरी प्रबंध की देखभाल करने के लिए। शैक्षिक परिषद् ही पाठ्यक्रम निर्धारित करती थी।

इत्सिंग ने लिखा है कि वलभी में अध्यापक दो या तीन वर्ष तक विधार्थियों को शिक्षा देते थे और उच्च कक्षाओं के विधार्थी निचली कक्षाओं के विधार्थियों को पढ़ाते थे। इन संस्थाओं के स्नातकों की इतनी प्रसिद्धि थी कि चीन और तिब्बत आदि देशों के विधार्थी भी इनसे शिक्षा प्राप्त करने आते थे। नालंदा और विक्रमशिला जैसे विश्वविद्यालयों के अनेक विद्वान भारतीय संस्कृति का प्रचार करने के लिए तिब्बत, चीन और मध्य एशिया गए। इन संस्थाओं में कुछ विषयों जैसे कि व्याकरण, छन्द, तर्कशास्त्र या गणित के अध्ययन पर बहुत बल दिया जाता था। बौद्ध विहारों में बौद्ध धर्म के 18 सम्प्रदायों के सिद्धांतों की भी शिक्षा दी जाती थी, किंतु कुछ उपयोगी विषयों जैसे कि भूगोल आदि के अध्यापन की उपेक्षा की जाती थी।

बौद्ध जाति प्रथा के विरूद्ध थे अतः उनकी शिक्षा संस्थाओं में सभी जातियों के विधार्थी प्रविष्ट होते थे। केवल चंडाल जैसी हीन जातियों के बालकों को उनमें प्रविष्ट नहीं किया जाता था। इसलिए जाति प्रथा का बौद्ध शिक्षा संस्थाओं में शिक्षा के प्रसार पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ा।

युवानच्यांग के अनुसार नालंदा में बौद्ध धर्म के अठारह सम्प्रदायों के सिद्धांतों के अतिरिक्त वेदों, तर्कशास्त्र, व्याकरण, आयुर्वेद, अथर्ववेद्या और सांख्य दर्शन आदि की शिक्षा दी जाती थी।[5] इत्सिंग ने लिखा है कि इस काल में अधिकतर पाठ्य पुस्तकें सूत्र शैली में या पद्य में थी जिससे कि विधार्थी उन्हें सरलता से कंठस्थ कर सके। उसके अनुसार पहले सद्धिविहारको को मातृवेट के दो सूक्त पढ़ाये जाते थे, फिर पाँच और इस शीलों के सिद्धांत समझाये जाते थे। इसके बाद उन्हें विनयपिटक का पूर्ण ज्ञान कराया जाता था। प्रायः सभी भिक्षुओं के लिए सूत्र पिटक और अभिधम्म पिटक का भी अध्ययन करना अनिवार्य था।[6]

इस प्रकार शिक्षा भारतीय जीवन का आवश्यक अंग रही है। शिक्षा के महत्व को भारतीय समाज के लिए इस रूप में माना गया है कि प्राचीन शिक्षा प्रणाली का उद्देश्य समाज में चरित्र निर्माण, धार्मिक उद्देश्यों की पूर्ति, प्राचीन संस्कृति की सुरक्षा व्यावहारिक सामाजिक गृहस्थ जीवन के उद्देश्यों को भावी बुद्धिमान पीढ़ी के नवनिर्माण में निहित रहा है। प्राचीन काल में विधार्थी घर से दूर शिक्षक के पास शिक्षा ग्रहण करने के लिए आते थे। शिक्षक के आश्रम में जाकर शिक्षा ग्रहण करने के महत्व को तिलमुट्ठि जातक में[7] इस प्रकार स्पष्ट किया गया है जिससे विधार्थी का मानमर्दन हो जाये, सर्दी, गर्मी एवं कष्ट में रहने का अभ्यास हो जाय तथा लोक व्यवहार का ज्ञान हो जाय। अतः जातक कथाओं में बार–बार उल्लेख आया है कि ज्ञान पिपासु विधार्थी सोलह वर्ष के होने पर माता–पिता को प्रणाम कर सभी विधाओं का ज्ञान प्राप्त करने के लिए आचार्यों के आश्रम में जाते थे।

इस प्रकार आचार्य और शिष्य दोनों ही अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए बिना पक्षपात के आचार्य कुल के वातावरण को मधुर, अनुशासित, शिक्षा प्रधान व शांतिपूर्ण बनाये रखते थे। शिष्य अपनी इच्छाओं और इन्द्रियों पर नियंत्रण रखकर जीवन के सर्वांगीण विकास वाली शिक्षा प्राप्त करते थे। धर्मशास्त्रियों ने कहा है कि शिष्य संयमी होकर गुरू की आज्ञा का पालन करते हुए अपनी इन्द्रियों पर नियंत्रण रखकर शिक्षा प्राप्त करे। ऐसा ही वातावरण बौद्धकालीन शिक्षा आश्रमों में दृष्टिगोचर होता है।

बौद्ध शिक्षण पद्धति का आरंभ स्वयं महात्मा बुद्ध ने किया था, जिसमें सरल और सुबोध जनभाषा में जीवन के तत्वों की चर्चा थी। व्याख्यान और प्रश्नोत्तर के आधार पर विचारों का आख्यान किया गया था। उन्होंने धर्म के प्रचार में प्रासंगिक उपमा, दृष्टांत, उदाहरण, कथा आदि का समावेश किया था, जिससे उसका तत्व श्रोताओं को सरलतापूर्वक बोधगम्य होता था। विचार विनिमय तर्क और पर्यालोचन को बौद्ध धर्म में प्रतिष्ठित किया गया। बौद्ध शिक्षा पद्धति में सत्य, दार्शनिक तथ्य, तर्क, पर्यवेक्षण, मनन आदि पर अधिक बल दिया गया। बुद्ध के पश्चात् समाज में बौद्ध शिक्षा का क्रमशः प्रसार होने लगा। बौद्ध मठों और विहारों के

माध्यम से बौद्ध शिक्षा का प्रचार भारत के विभिन्न भागों में हुआ। प्रारंभ में हिन्दू और बौद्ध शिक्षाओं के मूल में कोई विशेष अंतर नहीं था, किंतु बाद में आकर दोनों शिक्षा प्रणालियों के आदर्श और पद्धति में बहुत कम साम्य रह गया।

विनय और धर्म की शिक्षा उपासक को दी जाती थी, जिसमें महात्मा बुद्ध के धर्म सिद्धांतों का नियोजन होता था। सुत्र, विनय और धम्म के शिक्षार्थी एक साथ रहते थे अथवा भिक्षु सुत्र का पाठ करते थे विनय का विमर्श करते थे तथा धम्म का पर्यालोचन करते थे, जिससे उनके ज्ञान की वृद्धि होती थी। यही नहीं बौद्ध विहारों के माध्यम से बुद्ध के वचन और शिक्षाएँ प्रसारित होती थी। बौद्ध संघ में भिक्षु को दीक्षा प्राप्त करने के लिए प्रव्रज्या और उपसम्पदा जैसे संस्कार भी आवश्यक माने गये। प्रव्रज्या ग्रहण से ही उपासक का जीवन प्रारंभ होता था।[8] इसमें उसके अभिभावक की अनुमति आवश्यक होती थी।[9] प्रायः 8 वर्ष के बाद किसी का भी प्रव्रज्या संस्कार सम्पन्न किया जा सकता था। ऋषि प्रव्रज्या के अंतर्गत बालक गृहीत किया जाता था, जहाँ वह बौद्ध शिक्षा ग्रहण करता था। ऐसे बौद्ध वर्षा ऋतु के अतिरिक्त सभी ऋतुओं में भ्रमण करते थे। ऐसे प्रव्रजित को करूणा, सुविता और उपेक्षा भावनाओं का अभ्यास करना पड़ता था। उसे मैत्री भावना से सुभाषित चित्त अर्पण समाधि और ब्रह्मपरायणता का अनुपालन करना पड़ता था। उपासकत्व की समाप्ति पर बौद्ध भिक्षु के लिए उपसम्पदा संस्कार की आयोजन की जाती थी।[10] उस समय तक उसकी आयु 30 वर्ष के लगभग हो जाती थी। उपासक बनने के लिए किसी प्रकार का भेदभाव नहीं था। उसे केवल बुद्ध के उपदेशों और शिक्षाओं पर विश्वास करना पड़ता था। वह भिक्षु आचार्य के निर्देशों और शिक्षाओं पर चलता था। बुद्ध धर्म और संघ के प्रति उपासक सर्वदा निष्ठावान रहता था।[11] संघ में रहते हुए संघ के नियमों और आचारों का भिक्षु छात्र दृढ़तापूर्वक पालन करता था। वह विहार के सभी कार्यों की देखभाल करता था। हिन्दू छात्रों की भाँति वह भी ब्रह्मचर्य व्रत और अध्यात्म मार्ग का अनुपालन करते हुए भिक्षाटन करता था। भिक्षु को अध्ययनरत होते हुए अपना चित्त और मन प्रांजल और उदात्त रखना पड़ता था। इसीलिए महात्मा बुद्ध का कथन था कि भिक्षुओं पशु भी पारस्परिक प्रेम और सौहार्द के साथ रहते हैं। तुम्हे भी इसी प्रकार रहना चाहिए, जिससे तुम्हारा प्रकाश शोभायुक्त हो।[12]

बुद्ध द्वारा उपदिष्ट सूत्रों को कंठस्थ कराया जाता था। बौद्ध शिक्षा के प्रसार में लोकभाषाओं की महत्ता सर्वोपरि है। बौद्ध विहारों में स्थित इन शिक्षा केन्द्रों में विभिन्न वर्गों, समुदायों, प्रतिभाओं और योग्यताओं के भिक्षु एकत्र शिक्षा पाते थे। चूँकि वे विभिन्न प्रदेशों से आते थे, इसलिए भाषा, नाम, वंश परम्परा और पारिवारिक दृष्टि से भी वे सभी भिन्न होते थे। विभिन्न प्रदेशों के भिक्षु बुद्ध वचनों का अपनी–अपनी भाषा में उच्चारण कर उसे विकृत कर देते थे। इसलिए दो प्रतिभाशाली बौद्ध भिक्षुओं ने बुद्ध से बुद्ध वचनों की संस्कृत छेदों में अनुदित करने की अनुमति माँगी। परन्तु बुद्ध ने उनका अनुरोध अस्वीकार कर दिया। संस्कृत उनकी दृष्टि से संभ्रांत जनों की भाषा होने के कारण सद्धर्म का संदेश सामान्य जन नहीं पहुँच सकता था। बौद्ध धर्म का संगठन ही लोकहित और लोक सुख के लिए किया गया था। बुद्ध ने स्वयं घोषणा की हे भिक्षुओ! बुद्ध वचन का छंद नही करना चाहिए। मैं अनुमति देता हूँ, बुद्ध वचनों को अपनी मातृभाषा में सीखने की। इसमें संदेह नहीं कि बौद्ध धर्म की शिक्षा ने भारत की विभिन्न मातृभाषाओं के विकास में बहुत बड़ा योगदान किया। वहीं मातृभाषाओं के माध्यम से स्वयं भी भारत के सुदूर प्रदेशों में लोकप्रिय हो गया। अशोक के अभिलेखों में विभिन्न भाषाओं और लिपियों के प्रयोग से इस बात की पुष्टि होती है। बुद्ध वचनों से यह भी पुष्टि होती है कि बौद्ध शिक्षा के आरंभिक वर्षों में शिक्षा के माध्यम के रूप में संस्कृत का महत्व काफी घट गया था, परंतु यह स्थिति कुछ सदियों तक ही रही।

संदर्भ सूची :–

1. जातक प्रथम, पृ. 437–39।
2. जातक, चतुर्थ, पृ. 237।
3. इत्सिंग, पृ. 117–120।
4. वाटर्स, प्रथम पृ. 159–61।
5. बील, पृ. 112।
6. इत्सिंग, पृ. 184।
7. जातक प्रथम, पृ. 437–439।
8. मज्झिम निकाय, पृ. 103।
9. महावग्ग, 1.50।
10. मिलिन्दपन्हो, 1.28।
11. जातक प्रथम, पृ. 106।
12. चुलवग्ग, 6.6.4।